International Journal of Multidisciplinary Horizon

ISSN: **3049-2017**
IJMH 2025; 2(5): 117-120
© 2025 IJMH
www.themultijournal.com

Received: 06-10-2025
Accepted: 24-10-2025
Publish : 28-10-2025

विनय व्यंकट गायकवाड
Research Scholar,
S.P.P.U Pune

Correspondence:
विनय व्यंकट गायकवाड
Research Scholar,
S.P.P.U Pune

।। न्याय-वैशेषिक के मतानुसार ईश्वरसङ्कल्पना ।।

विनय व्यंकट गायकवाड

प्रस्तावना-

प्राचीन काल से भारतीय दर्शनों में ईश्वरविचार किया गया है। भारतीय वैचारिक सभी संप्रदायों में ईश्वरतत्त्व का चिन्तन मनन किया गया है तथा आधुनिक काल तक भी चला रहा है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक ईश्वरतत्त्व के क्या विचार प्रस्तुत हुए है, उसमें क्या परिवर्तन हुआ तथा उसकी आधुनिक संकल्पना क्या है यह भाव इसमें प्रकटीत होगा। इसमें मुख्य रूप से भारतीय दर्शनों में ईश्वर संकल्पना के बारे में क्या विचार विमर्श हुआ है यह मुख्य केंद्र बिंदु है।

'ईश्वर' शब्द की निष्पत्ति में 'ईश ऐश्वर्ये' धातु से 'वरच्' प्रत्यय है[1]। ईश्वर सामान्यतः ईश्वरत्वविशिष्ट का अर्थ देता है[2], अतः किसी भी विभूतिशाली को सापेक्ष रूप से ईश्वर कहा जा सकता है जिस में ईशन का शील, धर्म तथा साधुकारिकता हो[3] एवञ्च पाणिनीय सूत्रों में सापेक्ष 'ईश्वर' के ही प्रयोग स्वामी या अधिपति अर्थ के साथ पाये जाते है[4]।

वेद एवञ्च उपनिषद्ग्रन्थ-

ऋग्वेद में 'ईश्वर' शब्द अनुपलब्ध है किन्तु उसी के अर्थ में 'ईशान' शब्द बहुशः प्रयुक्त मिलता है, स्त्रीलिङ्ग 'ईशाना' का प्रयोग है[5]। पुरुषसूक्त का प्रयोग निरपेक्ष ईश्वरत्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानः यदन्नेनातिरोहति[6]॥२॥

अर्थात् जो कुछ भूत एवं भावी है वह सब पुरुष ही है। वह अमृतत्व का ईशान है। अथर्ववेद में 'ईश्वर' के बहुल प्रयोग हैं। प्रस्तुत ऋग्वेदीय मन्त्र का कुछ परिवर्तित रूप इस प्रकार है।

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतस्येश्वरो यदन्येनाभावत् सह॥४॥[7]

अर्थात् भूत एवं भावी सब कुछ पुरुष ही है जो अन्य विश्व के साथ देवत्व का भी ईश्वर या स्वामी है। देवताओं को भी ईश्वर कहा गया है। इसी प्रकार ईश्वर शब्द का तथा उसके संबंधित वर्णन अथर्ववेद में हमें देखने को मिलता है[8]। इस प्रकार सृष्टिकर्ताओं के ऊपर सर्वेश्वर की प्रतिष्ठा प्राण एवं काल आदि नामों हुई है जो सभी सापेक्ष ईश्वरों पर आधिपत्य रखने वाला सर्वेश्वर है[9]।

बृहदारण्यक उपनिषद् में सन्तानोत्पादन हेतु मातापिता को द्विवचन में ईश्वर कहा है[10]। सापेक्ष ईश्वरों पर महेश्वर या सर्वेश्वर या परमेश्वर की मान्यता उपनिषदों में स्पष्ट देखी जाती है। उपनिषद्ग्रन्थों में भी ईश्वर को पतियों का परम पति तथा परात्पर तत्त्व, समष्टिरूप अन्तर्यामी, सर्वज्ञ, सभी भूतों के उत्पाद एवं प्रलय का अधिष्ठान आदि के रूप में स्वीकार किया गया है[11]। इसी के साथ कर्तृत्व एव भोक्तृत्व का अभिमान जीव का तथा नियामकत्व ईश्वर का स्वरूप है तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव सर्वेश्वरत्व न होते हुए सापेक्ष ईश्वर है[12]।

न्यायदर्शन-

न्यायदर्शन का ईश्वरवाद कर्मफल के विवेचन में प्रसृत हुआ है। सूत्रकार ने ईश्वरसिद्धि का प्रयास न करके उसे परम्परानुसार मान कर अवतारणा की है- अर्थात् पुरुष फलप्राप्ति के लिए चेष्टा करता हुआ सदैव कर्मफल की प्राप्ति का भागी नहीं हो पाता। पुरुषीय चेष्टा फलसिद्धि के प्रति अनैकान्तिक है। इस से

अनुमान होता है कि पुरुष के कर्मफल का आराधन उस के अधीन न होकर पराधीन है। जिस के अधीन फल की प्राप्ति रहती है वह ईश्वर है। इस प्रकार ईश्वर ही सभी कार्यों का कारण है[13]। उक्त ईश्वरसिद्धि का तर्क अन्यथासिद्ध है क्योंकि पुरुषीय कर्म के विना फल निष्पत्ति असंभव रहती है। फलप्राप्ति को ईश्वराधीन मान लिया जाय तो पुरुष की चेष्टा के विना भी फलनिष्पत्ति होनी चाहिए। अतः जीव ही कर्ता है और फलनिष्पत्ति का विधाता उसी को मानना चाहिए[14]। अर्थात् पुरुष के कर्म के विना फल की निष्पत्ति न होना ऐसा हेतु है जिस से ईश्वर का अकर्तृत्व सिद्ध होता है। परंतु व्याप्ति यही है कि जहाँ फलनिष्पत्ति है वहाँ पुरुष का कर्म है अन्यथा जहाँ पुरुषीय कर्म नहीं है वहाँ फलनिष्पत्ति नहीं है। परन्तु यह हेत्वाभास है क्यों कि पुरुषकर्म के होने पर भी फल का अवश्यभाव नहीं पाया जाता। अतः ईत्र कारयिता या प्रेरक कर्ता है जो पुरुषकार के प्रति अनुग्राहक हो कर फल के लिए प्रयासी पुरुष के फल का सम्पादन करता है। जब ईश्वर फलसम्पादन नहीं करता तब पुरुष का कर्म विफल हो जाता है। इस प्रकार कर्म पुरुषकृत है और फल ईश्वरकारित है जिस में पुरुष उपकरणमात्र है। इस संदर्भ में वात्स्यायन ने ईश्वर का स्वरूपनिरूपण किया है- '**गुणविशिष्टमात्मान्तरमीश्वरः। अधर्ममिथ्याज्ञानप्रमादहान्या धर्मज्ञान-समाधिसंपदा च विशिष्ट-मात्मान्तरमीश्वरः।**' अर्थात् विशेष गुणों से सम्पन्न एक प्रकार के आत्मा को ईश्वर कहा गया है। आत्माओं (जीवों) में अधर्म, मिथ्याज्ञान एवं प्रमाद का सम्पर्क रहता है परन्तु ईश्वर वह परमात्मा है जिस में धर्म, ज्ञान तथा समाधि गुण रहते हैं। इन गुणों से सम्पन्न विशिष्ट आत्मा ईश्वर है। यद्यपि जीवात्मा भी योगसिद्धि द्वारा उन गुणों से विशिष्ट हो जाता है।

परन्तु अणिमादि आठ प्रकार का ऐश्वर्य ईश्वर के धर्म एवं समाधि का फल है। उस का धर्म अन्य जीवों के समान यज्ञादिकर्म का अनुसरण न करके संकल्पानुसारी होता है। फलतः वह स्वेच्छा से प्रत्येक आत्मा के धर्माधर्मसंचयों को तथा पृथिव्यादि भूतों को प्रवर्तित करता है जिस से जीवात्मा स्वकृत कर्मों के फलभागी होते हैं और भौतिक सृष्टि प्रवृत्त होती है[15]। आत्माओं को स्वकृत प्रकारान्तर लेती है। अर्थात् स्वकृत कर्म की सामजंस्य स्थापित किया, जिसका स्पष्ट उल्लेख है। जैसे-

फलप्राप्ति का लोप नहीं होता। इस सिद्धान्त को ईश्वर पर भी लागू मानना चाहिए क्योंकि निर्माण के विषय में ईश्वर का प्राकाम्य सत्यसंकल्पत्व ही स्वकृत कर्म फल है[16]। ईश्वर आत्मा है, इस के अतिरिक्त न्याय की उपपत्ति असम्भव है। वह आप्त पुरुष है। अपत्यों के प्रति पिता के समान ईश्वर सभी प्राणियों का पितृरूप है[17]। आगम से प्रमाणित है कि ईश्वर द्रष्टा, बोद्धा एवं सर्वज्ञ है। ईश्वर की बुद्धि के विना किसी अन्य हेतु से वेदादि आगमों की सिद्धि नहीं हो सकती[18]। प्रमुख तीन आधारों पर न्याय में ईश्वरसिद्धि का उपक्रम देखा गया है- जीवात्माओं के कर्मफलों की प्रवर्तकता, तदर्थ भूतसर्ग की कर्तृता और सर्वज्ञ होने से वेदों की कर्तृता। तीनों पर विविक्त विचार करते हुए जयन्तभट्ट ने कहा है- पृथ्वी, जल, तेज तथा वायु के नित्य परमाणु अचेतन होने के कारण चेतन की प्रेरणा के विना विशिष्ट क्रम के साथ परस्पर संघटना नहीं प्राप्त कर सकते कि कार्यजगत् की सिद्धि में पर्याप्त हो सकें। अतः उन का अधिष्ठाता चेतन ईश्वर मान्य है जिस में सभी लोकों के निर्माण की बुद्धि रहती है। जिस प्रकार लौकिक कर्ता कारणसामग्री का ज्ञाता होता है उसी प्रकार सम्पूर्ण लोकों की कारण-सामग्री का ज्ञान रखने वाला ईश्वर सर्वज्ञ है[19]। ईश्वर भी तब तक विचित्र जगत् की सृष्टि नहीं कर सकता जब तक अनेक आत्माओं में फलविपाकोन्मुख धर्म तथा अधर्म के संस्कारों की विचित्रता के अनुसार प्रवृत्त न हो। तात्पर्य यह कि अनादि अदृष्ट वासनाओं के आधारभूत जीवों के शुभाशुभ विपाक हेतु ईश्वर द्वारा सृष्टि की जाती है जिस में ईश्वर के कर्तृत्व के अतिरिक्त जीवों का अदृष्ट भी निमित्त कारण है। केवल जीवों का अदृष्ट अपर्याप्त है क्योंकि किसी एक आत्मा के फलभोगार्थ त्रैलोक्य की रचना असंभव है और समुदित अदृष्टों की कारणता सिद्ध नहीं की जा सकती[20]। वेदों का कर्ता ईश्वर है परन्तु मीमांसकों ने पदों की नित्यता का सिद्धान्त स्थापित कर वेदों को अकृत्रिम घोषित किया है। नैयायिकों की स्थापना के अनुसार पदों की नित्यता भी अमान्य है किन्तु उसे मान लेने पर भी पदरचनारूप वाक्य में पुरुष का कर्तृत्व सर्वात्मना संभव होने से वेद अकृत्रिम नहीं हो सकता। अतः अन्यवाक्यवत् वाक्यरूप होने से वेदों का रचयिता ईश्वर है। अन्य पुरुष का कर्तृत्व असम्भव होने से परिशेषानुमान द्वारा ईश्वर का कर्तृत्व सिद्ध होता है[21]। जिस प्रकार वेद में प्रजापति की जहाँ-तहाँ प्रशस्ति मिलती है उसी प्रकार महाभारत में व्यास का उल्लेख है। दोनों के कर्ता को किसी ने नहीं देखा है फिर भी महाभारत के रचयिता वेदव्यास सर्वमान्य हैं उसी प्रकार लोकप्रसिद्ध है कि प्रजापति ईश्वर वेदों का स्रष्टा है।

वैशेषिकदर्शन-

वैशेषिक सूत्रों में ईश्वर या उस का वाचक कोई शब्द नहीं पाया जाता परन्तु आरम्भ तथा अन्त में जिस सूत्र की वेदप्रामाण्य के लिए आवृत्ति हुई है उस के आधार पर प्रशस्तपाद तथा शंकरमिश्र आदि व्याख्याताओं ने ईश्वर को सूत्रसम्मत माना है। संदर्भ सूत्रों को लेकर इस स्थापना को लाना अपेक्षित है। वस्तुतः सूत्रकार द्वारा ईश्वर का प्रत्याख्यान न करने से इस विचार को प्रेरणा मिली है जिस पर अन्य ईश्वरवादी दर्शनों का प्रभाव है। '**अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः।..... तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्**'[22]। धर्म की व्याख्या करना है। उस का वचन होने से वेद प्रमाण है। शंकर मिश्र ने द्विधा व्याख्या की है- यद्यपि प्रथम सूत्र में ईश्वर का उल्लेख नहीं है तथापि तद् शब्द द्वारा यह सूत्र प्रसिद्धिसिद्ध ईश्वर का बोध कराता है जैसा कि वेदप्रामाण्यसूत्र में गौतम के तद् प्रयोग से वेद का परामर्श किया गया

है। इस प्रकार ईश्वर द्वारा प्रतिपादित होने से वेद का प्रामाण्य यहाँ स्थापित किया गया है। धर्म का प्रसङ्ग होने से यह अर्थ हो सकता है कि यथार्थपरक धर्मवचन होने से वेद का प्रामाण्य है[23]। वेदप्रामाण्य की व्याख्या करते हुए ईश्वर को सिद्ध करते हुआ कहा क्षितिकर्ता या वेदकर्ता होने से पुरुषोत्तम परमेश्वर का अनुमान होता है जिस से उस की निर्दोष उपस्थिति होती है। लौकिक वक्ता रागवश तथा अज्ञानवश मिथ्या बोल सकता है किन्तु ईश्वर में उन दोषो के न होने से उस का वचन निरर्थक, विपरीतार्थक तथा निष्प्रयोजन नहीं हो सकता। आगे सूत्र इस प्रकार है- **'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यमिति'**[24]। उसका वचन होने से वेद प्रमाण है। यहाँ भी पूर्ववत् 'अभ्युदय' का पूर्वसूत्र से परामर्श करके अर्थ किया जा सकता है परन्तु शंकर मिश्र ने व्याख्या की है-'ईश्वर प्रणीत होने से वेद का प्रामाण्य है'। यह अनुमान से सिद्ध होता है[25]। न्यायदर्शन के संदर्भ में ऐसे परिशेषानुमानों की पुष्कल संख्या देखी गयी है। यहाँ वेदकर्ता के रूप में ईश्वर की सिद्धि का विशेष प्रयास है। प्रशस्तपाद ने सृष्टिसंहारकर्ता के रूप में परमेश्वर को मान्य किया है[26]।

निष्कर्ष-

मुख्यतः ईश्वर का विचार दो प्रकार से ग्रंथसंपदा में देखने को मिलता है। निरपेक्ष ईश्वर तथा सापेक्ष ईश्वर इसमें अथर्ववेद के कुछ मन्त्रों से हमें निरपेक्ष तथा सापेक्ष ईश्वर स्वरूप देखने को मिलता है ईससे पूर्व निरपेक्ष ईश्वर का विवेचन रहा इसी के साथ उपनिषद् ग्रन्थों में निरपेक्ष सापेक्ष ईश्वर का स्वरूप देखने को मिला परन्तु सामान्यतः ईशा नौ उपनिषदों में निरपेक्ष ईश्वर का स्वरूप देखने को मिला तथा अन्य उपनिषदों में सापेक्ष ईश्वर का वर्णन देखने को मिला। अर्थात् इससे यही तात्पर्य है की सापेक्ष ईश्वर। सापेक्ष ईश्वरों का विवेचन शास्त्रों का प्रतिपाद्य नहीं रहा है। सभी शास्त्र उस ईश्वर पर विशेष विचार करते हैं जो निरपेक्ष सर्वेश्वर एवं सर्वभूतात्मा है। उस में नित्य ज्ञान, इच्छा तथा प्रयत्न रहते हैं। इस तथ्य के विवरण में विविध दर्शन वैमत्य रखते हैं। बौद्ध तथा जैन अवैदिक दर्शन हैं जिन में किसी निरपेक्ष ईश्वर का स्थान नहीं है।

वस्तुतः भारतीय चिन्तन के प्रस्थानों में शाश्वतवाद तथा क्षणिकवाद की धाराएँ स्पष्ट पृथक् प्रतीत होती है। बौद्ध प्रस्थान के अतिरिक्त सभी दर्शन किसी न किसी पदार्थ को शाश्वत मानते हुए आत्मवादी हैं और आत्मा की सत्ता स्थापित करते हैं। जैनदर्शन तथा निरीश्वर साङ्ख्य में ही ईश्वर का प्रबल खण्डन पाया जाता है, मीमांसादर्शन आगमीय ईश्वर को यथावत् स्वीकार कर लेता है। साङ्ख्य की सेश्वर धारा योग में मुखर है अत एव वहाँ अनीश्वरवाद एकदेशीय मत माना जा सकता है। जैनों का दर्शन ही आत्मवादी प्रस्थानों में ईश्वर का खण्डन करता है। जैनदर्शन के उक्तसंदर्भ में खण्डनपरक जिन तर्कों को लाया गया है उन का प्रतिखण्डन ईश्वरवाद की सभी धाराओं में मिल जाता है जिन में न्याय, वैशेषिक, योग तथा वेदान्त प्रमुख हैं।

अनु.क्र	ग्रन्थनाम	संदर्भग्रन्थसूचि
१	**अष्टाध्यायी**	आचार्य पाणिनी, सं. डॉ. सुदर्शनदेव आचार्य, प्रकाशक ब्रह्मर्षि स्वामी विरजानन्द आर्ष धर्मार्थ न्यास गुरुकुल झज्जर जिला झज्जर, हरयाणा, दूरभाषा ०१२५१-५२०४४, मुद्रक- वेदव्रत शास्त्री, आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, गोहाना मार्ग, रोहतक-१२४००१, दूरभाषा- ०१२६२-४६८७४.
२	**तत्त्वचिन्तामणिः**	गंगेश उपाध्याय , सं. एन. एस. तातार्चार्य, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति : १९७३.
३	**तर्कभाषा**	केशव मिश्र , सं. बदरीनाथ शुक्ल , मोतीलाल बनारसीदास , वाराणसी : १९६८.
४	**तर्कसंग्रहः (दीपिकाटीका सहित)**	अन्नम्भट्ट , सं. दयानन्द भार्गव , मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन , नई दिल्ली : २००५.
५	**तर्कसङ्ग्रह सहित न्यायाबोधिनी**	उपाध्यायायान्नम्भट्ट, आचार्यगोवर्धनसुधी। सम्पादक- श्रीकेदारनाथत्रिपाठि, प्रकाशन- मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली ११०००७, द्वितीय संस्करण, ई.स.२०१२
६	**तर्कसङ्ग्रहदीपिका**	उपाध्यायायान्नम्भट्ट, सम्पादक- राजेश्रीकृष्णशास्त्रीगुर्जर, प्रकाशन वर्ष- शके १७८५
७	**नृसिंहतापिनी उपनिषद्**	प्रकाशक एवं मुद्रक गीताप्रेस, गोरखपुर २७३००५, गोविन्दभवन कार्यालय, कोलकाता का संस्थान
८	**न्यायकुसुमाञ्जलि**	उदयनाचार्यः , सं. महाप्रभुलाल गोस्वामी , मिथिला विद्यापीठ ग्रन्थमाला , सं. २३ , १९७२.
९	**न्यायदर्शनवात्स्यान-भाष्यम्**	वात्स्यायन , सं. नारायण मिश्र , काशी संस्कृत ग्रन्थमाला , ४३ , वाराणसी : १९७०.
१०	**न्यायभाष्यम्**	वात्स्यायन , सं. नारायण मिश्र , काशी संस्कृत ग्रन्थमाला , ४३ , वाराणसी : १९७०.
११	**न्यायमंजरी**	जयन्तभट्टरचित, संपादक सूर्यनारायण शर्मा, प्रकाशक जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, बनारस सिद्धी, संवत् १९९२,
१२	**न्यायसूत्रम्**	गौतम , सं. नारायण मिश्र , काशी संस्कृत ग्रन्थमाला , ४३, वाराणसी : १९७०.
१३	**पदार्थतत्वनिरूपणम्**	रघुनाथ शिरोमणि , सं. कार्ल पोटर , हार्वर्ड येन्चिंग इंस्टीट्यूट , सं. १७ , कैम्ब्रिज : १९५७.
१४	**प्रशस्तपादभाष्यम् (पदार्थधर्मसंग्रहः)**	प्रशस्तपादः, सं० नारायण मिश्रः, काशी संस्कृत
१५	**प्रशस्तपादभाष्यम् (पदार्थधर्मसंग्रहः)**	प्रशस्तपादरचित, संपादक तथा हिन्दीव्याख्याकार पण्डित दुर्गाधरझा शर्मा, अनुसंधानप्रकाशनपर्यवेक्षक, संपूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी, प्रकाशक- डॉ. हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठी, संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, २२१००२, मुद्रक रत्ना प्रिंटिंग वर्क्स, बी. २१\४२ ए कमच्छा, वाराणसी २११०१०, आवृत्ति द्वितीय, विक्रम संवत् २०५३.
१६	**वैशेषिकभाष्यम्**	प्रशस्तपादाचार्यः, सम्पादक- दुर्गाधर झा, गंगानाथझा ग्रन्थमाला क्र. १ प्रकाशक- सम्पूर्णानन्दविश्वविद्यालयः वाराणसी, संस्करण १९९७
१७	**वैशेषिकसूत्रम्**	*"भारद्वाजवृत्तिभाष्यसहितम्"*, सं० गंगाधर कविरत्न कविराजः, कलकत्ता :
१८	**सप्तपदार्थी**	शिवादित्य , सं. डी. गुरुमूर्ति , थियोसोफिकल सोसाईटी , आड्यार , मद्रास : १९३२.
१९	**सर्वदर्शनसंग्रहभाषा-टीकासहित**	श्रीमन्माध्वाचार्यविरचित, श्रीउदयनारायणसिंह टीकाकार, प्रकाशक खेमराज श्रीकृष्णदास, मुंबई, माघ संवत् १९६२, शके १८२७.

सन्दर्भः-

[1]स्थेशभासपिसकसो वरच्। पाणिनी.सूत्र.३.२.१४७.

[2]ईश्वरतेश्वरभावः। महाभाष्यम्.२.३.९.

[3]आ क्वेस्तच्छील-तद्धर्म-तत्साधुकारिषु। पाणिनी.सूत्र.३.२.१३४.

[4]पाणिनी.सूत्र. १.४.९६, २.३.९, ३.४.१३

[5]ऋग्वेद. १.११३.७, ८.८३.५, १०.९.५

[6]ऋग्वेद. १०.९०.२.

[7]अथर्ववेद. १०.०६.०४.

[8]मा मा हिंसिषुरीश्वराः। अथर्ववेद. ०७.१०५.०१.

[9]प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥०१॥
अथर्ववेद. ११.०६.०१.
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः।
अथर्ववेद.१९.५३.०८.
तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम्।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम्। अथर्ववेद.१९.५३.०९.

[10] ईश्वरौ जनयितवै. बृहदारण्यकोपनिषद्.६.४.१४-१७.

[11] तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥
श्वेताश्वेतोपनिषद्.६.७.
एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोन्तर्याम्येष
योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्।
माण्डूक्योपनिषद्.६.

[12] ब्रह्मविष्णुशिवरूपिणी.....। नृसिंह तापिनी उपनिषद् २.९.६., २.९.७.

[13] ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्। न्यायसूत्रम्. ४.१.१९.
पुरुषोयं समीहमानो नावश्यं समीहाफलं प्राप्नोति, तेनानुमीयते पराधीनं पुरुषस्य कर्मफलाराधनमिति। यदधीनं स ईश्वरः तस्मादीश्वर रणमिति। वात्स्यानभाष्यम्.

[14] न, पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तिः। न्यायसूत्रम्.४.१.१९.
ईश्वराधीना चेत् फलनिष्पत्तिः स्यादपि तर्हि पुरुषस्य समीहा-मन्तरेण फलं निष्पद्येतेति। वात्स्यानभाष्यम्.

[15] तस्य च धर्मसमाधइफलमणिमाद्यष्टविधमैश्वर्यम्। सङ्कल्पानु-विधायी चास्य धर्मः। प्रत्यात्मवृत्तीन् धर्माधर्मसञ्चयान् पृथिव्यादीनि च भूतानि प्रवर्तयति। वात्स्यायनभाष्यम्.

[16] एवं च स्वकृताभ्यागमस्यालोपेन निर्माणप्राकाम्यमीश्वरस्य स्वकृत-कर्मफलं वेदितव्यम्। वात्स्यायनभाष्यम्.

[17] तस्यात्मकल्पात् कल्पान्तरानुपपत्तिः.....आप्तकल्पश्चायम्। यथा पितापत्यानां तथा पितृभूत ईश्वरो भूतानाम्। न चात्मकल्पादन्यः कल्पः सम्भवति। वात्स्यायनभाष्यम्।

[18] न तावदस्य बुद्धिं विना कश्चिद् धर्मो लिङ्गभूतः शक्य उपपादयितुम्। आगमाच्च द्रष्टा बोद्धा सर्वज्ञाता ईश्वर इति। वात्स्यायनभाष्यम्।

[19] त इमे परमाणवश्चेतनेच्छाप्रेरणामन्तरेण विशिष्टक्रमकमितरे-तरसंघटनमलभमानाः कार्यसिद्धये न पर्याप्नुयुरचेतनत्वादिति चेतन एषामधिष्ठाता सकलभुवननिर्माणमतिरीश्वरोभ्युपगतः।
न्यायमञ्जरी भाग २, पृ. ७३.

[20] ईश्वरोपि नानेकात्मवृत्ति-विपाकोन्मुख-धर्माधर्म-संस्कारवैचित्र्य मन-नुरुध्यमानो विचित्रस्य जगतो जन्म निर्मातुमर्हति। न्यायमञ्जरी भाग २, पृ. ७३.

[21] पदनित्यत्वपक्षेपि वाक्ये तद्रचनात्मके कर्तृत्वसम्भवात् पुंसो वेदः कथमकृत्रिमः॥ न्यायमञ्जरी भाग २, पृ. २१३.

[22] वैशेषिकसूत्रम्. १.१.१-३.

[23] तदित्यनुपक्रान्तमपि प्रसिद्धिसिद्धतयेश्वरं परामृशति। यथा 'तदप्रमाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः' इति गौतमीयसूत्रे (२.१.५७) तच्छब्देनानुपक्रान्तोपि वेदः परामृश्यते। तथा च तद्वचनात् तेनेश्वरेण प्रणयनादाम्नायस्य वेदस्य प्रामाण्यम्। यद् वा तदिति सन्निहितं धर्ममेव परामृशति। तथा च धर्मस्य वचनात् प्रतिपादनादाम्नायस्य वेदस्य प्रामाण्यम्। शङ्करमिश्ररचित-उपस्कारग्रन्थः।

[24] वैशेषिकसूत्रम्.१०.२.०९.

[25] तद्वचनात् तेनेश्वरेण वचनात् प्रणयनादाम्नायस्य वेदस्य प्रामाण्यम्। शङ्करमिश्ररचित-उपस्कारग्रन्थः।

[26] प्रशस्तपादभाष्यम् पृ. १२१-१३१.